# पुस्तक

*- पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी*

*पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की गणना श्रेष्ठ निबंधकारों में की जाती है। उन्होंने अपने निबंधों में विचार और भाव का समुचित समावेश किया है। इससे उनके निबन्धों में लालित्य का गुण आ गया है। प्रस्तुत निबंध पुस्तक की आत्मकथा के रूप में लिखा गया है। पुस्तक की रचना में उसके रचनाकार की साधना सर्वोपरि है। पुस्तक अपने लेखक की आत्मा का प्रकाश ही होती है। संसार के सुख-दुख, हर्ष-उल्लास, शौर्य और गौरव, आतंक और विस्मय पुस्तक के कलेवर में रस रूप में प्रतिष्ठित होकर जीवन-बोध, जीवन-प्रेरणा और जीवन के रंजन का आधार बनते हैं। पुस्तक जीवन के अमृत तत्व से परिपूर्ण रचनाकार की महत्ता और पुस्तक की महत्ता को एक साथ इस निबंधात्मक आत्मकथा में प्रकट किया गया है।*

सत्य अनन्त है, ज्ञान अनन्त है और ब्रह्म अनन्त है। उसी तरह मेरा भी अन्त नहीं है। पर जो असीम है, वह किसी सीमा में आबद्ध होकर प्रत्यक्ष होता है। जो महत् है, वह क्षुद्रता को स्वेच्छा से स्वीकार कर लीलामय हो जाता है। जो अन्तहीन ज्ञान है, वह भी मेरा ही क्षुद्र - रूप धारण कर आनन्द - रूप और रस - रूप हो जाता है। मैं ग्रंथ हूँ, ज्ञान का सागर हूँ, विद्या की निधि हूँ, रस का भण्डार हूँ । मुझसे संसार ज्ञान प्राप्त करता है। मेरे ही कारण मनुष्यों की उन्नति हुई। यदि मैं न होता, तो मनुष्य और पशु में क्या भेद रहता ? जिन लोगों में मेरा प्रचार नहीं है, उनको जाकर देखो। वे अभी तक वन्य पशुओं की तरह जंगलों में भटकते फिरते हैं । उन्हें केवल उदरपूर्ति की चिन्ता रहती है। ज्ञान का गौरव वे क्या समझें, साहित्य की महिमा वे क्या जानें, विज्ञान की शक्ति का उन्हें क्या पता ?

परन्तु तुम मुझे कागजों का बण्डल मत समझो। यह मत समझो कि प्रेस ने मुझे दबा-दबाकर तैयार किया है। प्रेस, कागज और स्याही तो जड़ वस्तु है, उनमें ज्ञान कहाँ ? इसी प्रकार अक्षरों को जोड़ने वाले या प्रेस को चलाने वाले या दुकान में बैठकर मुझे बेचने वाले मेरे जन्मदाता नहीं हैं । तुम उन्हें भले ही मेरा प्रकाशक मानकर उनकी प्रशंसा करो, पर मुझे तो यथार्थ प्रकाश मिलता है किसी की अन्तर्ज्योति से। मुझे बेचकर जो लोग सम्पत्तिशाली हो गए हैं, वे अपने वैभव का गर्व भले ही करें और तुम लोगों से प्रतिष्ठा और आदर पाकर गौरव के उच्च शिखर पर भले ही बैठ जाएँ, पर मैं तो किसी तपस्वी की तपस्या का फल हूँ, मैं तो किसी ज्ञानी की अनवरत साधना का परिणाम हूँ। मुझमें किसी दूसरे की आत्मा निवास करती है।

देश और काल का अतिक्रमण कर कहीं आत्मा मुझमें निविष्ट होकर तुम लोगों को अपना दिव्य सन्देश सुनाती हैं। न जाने कब कुरूक्षेत्र में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया था, पर पुस्तक के रूप में तुम आज भी उनकी वाणी सुन सकते हो। न जाने किस आषाढ़ के प्रथम दिवस में मेघ के दर्शन कर कालिदास की चित्तवृत्ति अन्यथा हो गई, पर प्रेम और वियोग का जो गान उस दिन उनके अन्तःकरण में उद्‌भूत हुआ, वह तुम मेरे ही समान पुस्तक में पाओगे । अतीत और वर्तमान युग के कितने ही महात्माओं, ज्ञानियों और कवियों के उद्‌गार तुम हमसे सुन लोगे ।

मैं आनन्द की सृष्टि हूँ । संसार में जो सुख, जो सौन्दर्य, जो उल्लास, जो शौर्य,जो गौरव, जो वेदना, जो आतंक और जो विस्मय है, वही जब किसी के अन्तर्जगत् में जाकर रस-रूप में परिणत हो जाते हैं, तभी मेरी रचना होती है। विश्व की वेदना से करूणार्द्र, संसार के अत्याचार और अन्याय से क्षुब्ध, ज्ञान की महिमा से विस्मित तथा जीवन की सुषमा से पुलकित किसी द्रष्टा या स्रष्टा की कृति मैं हूँ । तुम मेरे पृष्ठ पर जो मूल्य देखते हो, वह मेरा मूल्य नहीं है, वह तो किसी

व्यवसायी के लाभ और लोभ का सूचक है। यह सच है कि मेरे कितने ही निर्माताओं को अपनी कृतियों के लिए अपरिमित सम्पत्ति प्राप्त हुई है, पर कुछ ऐसे भी हुए हैं, जो जीवन भर कष्ट सहकर संसार को अमूल्य निधि के रूप में अपनी रचना दे गए हैं । यदि आज आरनाल्ड बेनेट को प्रत्येक शब्द के लिए 16 रुपये मिलते हैं, तो कभी गोल्डस्मिथ को आजीवन दरिद्रता में ही बराबर साहित्य की सेवा करनी पड़ी है। प्रकाशकों के लिए मैं अवश्य अर्थ सिद्धि का साधन हूँ , पर अपने कर्ताओं के लिए मैं आनन्द का ही साधन हूँ । दुःख में, कष्ट में, विपत्ति में मुझी से उन्हें सांत्वना मिली है। मेरे ही लिए उन्होंने गर्व किया है। मेरे लिए उन्होंने वैभव का तिरस्कार किया है। इसीलिए मैं उनके गौरव की स्मृति हूँ, मैं उनकी वेदना का सहचर हूँ, मेरे इस पृष्ठांकित मूल्य में अन्य व्यवसायों की तरह धूर्तता है, छल है, कपट है, स्वार्थसिद्धि है। मेरा यथार्थ मूल्य है कवि की कीर्ति में, ग्रंथकर्ता के चिरन्तन गौरव में और उस अलौकिक आनन्द में, जिसका उपभोग तुम कर रहे हो।

पर मेरे सभी बान्धव मेरी तरह यह बात दृढ़तापूर्वक नहीं कर सकते । अधिकांश का जीवन अत्यंत क्षणिक होता है। खद्योत की ज्योति की तरह उनमें ज्ञान की अत्यंत अल्प ज्योति रहती है। पर उनकी क्षणिकता में ही उनकी उपयोगिता है। प्रातःकालीन शीत-बिन्दुओं की तरह उनमें यह शक्ति नहीं रहती कि ज्ञान के तीव्र उत्ताप में वे रह सकें । परन्तु क्षुद्र होने पर उनमें रस की तरलता रहती है, उनमें भी प्राणों का आवेग रहता है, आनन्द का उच्छ्वास रहता है, अनन्त स्वर्ग की आभा रहती है। वे भी ज्योतिर्मय की ज्योति से उद्भासित रहते हैं । वे भी क्षण भर कुछ के हृदय को शीतल कर जाते हैं, कुछ को घड़ी भर आर्द्र कर जाते हैं। अपने ही समान क्षुद्र, पददलित, तृणवत् जनों की वे कुछ सेवा कर ही जाते हैं। ऐसों के निर्माता विश्व से अनादृत, तिरस्कृत और प्रताड़ित भले ही हों, पर यह समझ रखो सभी स्थितियों में उनसे तुम लोगों का उपकार ही होगा, अपकार नहीं ।

जब ज्ञान आनन्द का रूप ग्रहण करता है, तभी उससे सत्साहित्य की रचना होती है। जब वह व्यवसाय का रूप धारण करता है, जब वह लेन-देन, लाभ-हानि का साधन बन जाता है, तब वह साहित्य के तड़ाग में कमल के रूप में विकसित न होकर मत्स्यों के रूप में परिणत हो जाता है। तब जो मत्स्यजीवी हैं, वे उन्हें बाजार में बेचकर उदर-पूर्ति करते हैं। वहाँ छोटी-बड़ी सभी मछलियों के लिए ग्राहक मिल जाते हैं। उसमें लोक-रुचि की प्रधानता रहती है। उसी से उनका मूल्य निर्दिष्ट होता है। उसी मूल्य में मत्स्यजीवी की सफलता है। संसार में सफलता की यही कसौटी है। जो व्यक्ति जिस इच्छा से कोई काम करता है, उसकी उस इच्छा की पूर्ति हो जाने पर ही वह अपने को सफल अवश्य समझेगा। संसार में धन की महत्ता है, कीर्ति का गौरव है, पद की प्रतिष्ठा है। कुछ काम धन के लिए किए जाते हैं, कुछ कीर्ति के लिए और कुछ पद के लिए। इसके अतिरिक्त कुछ काम ऐसे भी होते हैं, जो आनन्द के ही लिए किए जाते हैं। धन के लिए जब कोई व्यक्ति प्रयत्न करता है, तब उसे कीर्ति, पद या आनन्द की चाह नहीं होती। अर्थ-कष्ट में पड़कर कितने ही बड़े लोगों को ऐसे काम करने पड़ते हैं, जो न उनके गौरव के वर्द्धक हैं और न उनकी कीर्ति के। इसी प्रकार जो लोग एकमात्र अर्थसिद्धि में ही अपने जीवन की सफलता समझते हैं, उनके लिए कीर्ति या महिमा भी बाधक हो जाती है।

सच पूछो तो मेरे लिए न कीर्ति की महत्ता है, न पद की और न धन की। आज जो कीर्ति, पद और धन का उपभोग कर रहे हैं, वे नहीं रह जाएँगे, पर मैं रह जाऊँगा। कालिदास के आश्रयदाता नरेश कहाँ हैं, तुलसीदास के समय का मुगल-वैभव कहाँ है। पर मेरे रूप में रामचरितमानस तो अब भी हैं । आज जो छोटे-बड़े लोक सम्पत्ति और प्रभुता के अधिकारी हैं और जिनकी सेवा, प्रशंसा और यशोगान में मेरे ही निर्माता संलग्न हैं, वे सभी अपनी सारी प्रभुता और धर्म को लेकर न जाने कहाँ विलीन हो जाएँगे। रह जाऊँगा मैं, क्योंकि मुझी में चिरन्तन आनन्द और गौरव है। तो भी यह सच है कि जीवन-निर्वाह के लिए धन की आवश्यकता होती है। इसीलिए किसी न किसी रूप में प्रायः सबको अर्थसिद्धि के लिए कोई काम करना पड़ता है। मेरे निर्माताओं की साहित्यसेवा में अर्थसिद्धि की भावना है ही नहीं, यह कहना सच नहीं है। पर यह बात भी सच है कि साहित्य द्वारा आनन्द के रूप में मेरे निर्माता स्वयं जो कुछ पा जाते हैं, वहीं उनका यथार्थ पुरस्कार है। बिहारी अपने सात सौ दोहों के लिए सात सौ मुहरें पाकर सन्तुष्ट हो गये। पद्माकर अपने एक-एक अक्षर के लिए लाखों की सम्पत्ति पा गए। फिर भी यह पुरस्कार दूसरों की कृपा पर निर्भर है। कोई किसी का मान करे या अपमान, उसे अपनी कृतियों से जो संतुष्टि होती है वही यथार्थ में साहित्य कार्य के लिए प्रेरित करती है। संसार में अपनी विशेष स्थिति

से ही कोई मान या गौरव पाता है और विशेष स्थिति में पड़कर उसे अपमान भी सहना पड़ता है और कष्ट भी उठाना पड़ता है। मेरे साहित्य के क्षेत्र में यह कोई चिन्तनीय बात नहीं है। मेरी यथार्थ हत्या तो तब होती है, जब तुम स्वयं साहित्य के उच्च आदर्श को छोड़कर उसे क्षणिक मनोविनोद, क्षणिक उपयोगिता अथवा क्षणिक प्रभुता का साधक बना डालते हो, या जब तुम मिथ्या प्रशंसा, मिथ्या गौरव, मिथ्या अभिमान से प्रेरित हो साहित्य के क्षेत्र की अपनी स्वार्थसिद्धि का एक उपाय समझकर, उसी के लिए दल बनाकर परस्पर एक-दूसरे की प्रशंसा कर, अपने-अपने विपक्षियों की निन्दा कर उछल-कूद करते रहते हो। साहित्य के सरोवर में भ्रमर हैं, वक हैं और ऐसे भैंसे भी हैं, जो उसके निर्मल जल को गँदला करते रहते हैं, पर मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। तुम मेरा आदर करो या मत करो, पर यह जान लो ।

**बन्धुवर, मैं एक निष्प्राण ग्रंथ नहीं हूँ । मुझमें एक मनुष्य की आत्मा-विद्यमान है। जीवन-सागर का मन्थन कर उसमें वेदना और कष्ट के रूप में जो विष उसने प्राप्त किया, उसे वह स्वयं भी पी गया और अमृत के रूप में जो कुछ मिला, वही मुझमें विद्यमान है।**

## अभ्यास

### बोध प्रश्न

1. मनुष्य पुस्तकों से कौन-कौन से गुण अर्जित करता है ?
2. सत् साहित्य की रचना कब होती है?
3. इस पाठ में वर्णित दो महाकाव्यों के नाम लिखिए।
4. चिरन्तन आनंद और गौरव किसमें निहित है?
5. 'मुझमें किसी दूसरे की आत्मा निवास करती है' से क्या आशय है समझाइए ।
6. 'किताब का यथार्थ मूल्य' किसमें निहित है?
7. व्यक्ति द्वारा किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्य किए जाते हैं ?
8. पुस्तक एक निष्प्राण ग्रंथ क्यों नहीं है?
9. संसार में सफलता की कसौटी क्या है?
10. जिन्हें केवल उदरपूर्ति की चिंता रहती है वे किस महत्व को नहीं जानते ?

### योग्यता विस्तार

1. 'पुस्तकालय का महत्व' समझते हुए घर में छोटा पुस्तकालय बनाइए।
2. 'पुस्तकें हमारी मित्र' शीर्षक पर संक्षिप्त निबंध लिखिए।

### शब्दार्थ

खद्योत - जुगनू, सरोवर - तालाब, भ्रमर - भँवरा, निष्प्राण - प्राण रहित, गँदला - मैला, उदर - पेट

* * *